हिंदी रंग आंदोलन तथा हबीब तनवीर

कुसुमलता मलिक

हिंदी रंग आंदोलन तथा हबीब तनवीर

कुसुमलता मलिक

प्रकाशक: नॉटनल

प्रकाशन: अप्रैल, 2022

© कुसुमलता मलिक

कुछ विचार

हिंदी नाटक तथा रंगमंच की अपनी पहचान अथवा अपनी अस्मिता को स्थापित करने वाले हबीब तनवीर पर विचार करने का मतलब होता है, पिछले छः सात दशकों के हिंदी रंग कर्म पर विचार करना। हिंदी नाट्य का कौन-सा रूप उसके अपने व्यापक स्वरूप का निर्धारण करता है अथवा भविष्य में करेगा-इस प्रश्न के बोध से भी यही अनुभव होता है कि हिंदी नाटक की अपनी पहचान, अपनी अस्मिता, अपनी ज़मीन, अपनी पृथकता- प्राचीन संस्कृत नाट्य परंपरा तथा मध्ययुगीन लोक नाट्य परंपरा दोनों से एक साथ एक धरातल पर कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में अर्थ ग्रहण करती है। उसकी सार्थकता इन दोनों परंपराओं से एक साथ जुड़ने की प्रक्रिया में निहित है। इनसे जुड़कर हिंदी नाटक अपनी जड़ों तक पहुँचता है। इसी संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि प्राचीन रंग परंपरा ही मध्ययुगीन रंग परंपरा के रूप में अखिल भारतीय स्तर पर, लोक नाट्य रूपों में परिवर्तित होकर भाषांतर तथा रूपांतर से जनसाधारण तक पहुँच रही थी फिर इन दोनों को पृथक करके देखना अनुचित ही प्रतीत होता। नाटक लोक से जन्मता है, लोक में विकास पाता है, लोक में विलीन हो जाता है।

हबीब तनवीर ने आचार्य भरतमुनि द्वारा प्रवर्तित एवं परिलक्षित इसी लोक मानस को पकड़ा है। हबीब ने हिंदी रंग परंपरा को समन्वित, सांस्कृतिक शक्ति के

रूप में व्यवहित किया है। इसी संदर्भ में प्रस्तुत पुस्तक में निर्देशक एवं नाटककार सृजनधर्मी हबीब तनवीर पर विचारात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। हिंदी रंगकर्म के पिछले लगभग 60-70 वर्षों के रंग इतिहास में हबीब तनवीर अकेले ऐसे प्रतिभा संपन्न, प्रयोगधर्मी निर्देशक व नाटककार रहे हैं, जिन्होंने हिंदी रंग कर्म को न केवल अखिल भारतीय आयाम प्रदान कर नया अस्मिता बोध दिया है, न केवल लोक कलाकारों के साथ जुड़कर लोक नाट्य परंपरा का नवीन संस्कार किया है, न केवल हिंदी रंगकर्म को अन्वेषण एवं प्रयोग की नई दिशाएं एवं हिंदी नाट्य के स्वरूप निर्धारण को नई दिशा प्रदान की है वरन् उसकी पहचान विश्व भर में स्थापित की है। 'आगरा बाज़ार' से लेकर 'देख रहे हैं नैन' तक तथा 'देख रहे हैं नैन' से लेकर 'विसर्जन' तक उनका सफ़र परंपरा एवं आधुनिकता दोनों को एक साथ तय करता है अथवा साधता है। यह सफ़र हिंदी नाट्य को उसका स्वरूप तथा उस स्वरूप को रूपाकार प्रदान करता है।

हबीब साहब के साथ ही साथ, 'हिंदी के रंग स्वरूप' पर विचार करते हुये निष्कर्ष रूप में इस पुस्तक की उपलब्धि यह रही है कि नाटक अपने समय, अपने समाज, अपनी परंपरा, अपनी ज़मीन, अपने लोक का होता है और इनसे जुड़कर ही वह सार्थकता प्राप्त करता है। नाटक के सामाजिक सरोकार के विस्तार की चर्चा नाट्य शास्त्र में आचार्य भरतमुनि ने भी विस्तार पूर्वक की है। आचार्य भरत ने

मांगल्य भाव (रस) को उसका केंद्रीय बिंदु माना है जिसके लिये संपूर्ण सहयोगी सामूहिक अनुष्ठानमूलक उपक्रम किया जाता है।

वे कहते हैं:- 'इस नाट्य वेद के अंतर्गत कहीं धर्म है, कहीं क्रीड़ा, कहीं अर्थ है, कहीं शांति अथवा शम, कहीं हँसी, कहीं युद्ध, कहीं काम, कहीं क्रोध, इसमें कर्तव्य पालन करने वालों के लिए कर्तव्य शिक्षा है, कामियों के लिए काम है, दुर्विनीतों के लिए निग्रह करने और विनीत जनों के लिए श्रम शिक्षा निहित है। यह नाट्य वेद कायरों में साहस उत्पन्न करने वाला, वीरों में उत्साह भरने वाला, अज्ञानियों को ज्ञानबोध कराने वाला तथा ज्ञानियों को संयम तथा विद्वता प्रदान करने वाला है। यह ऐश्वर्यशालियों के लिए विलास है, दुखियों को हिम्मत बंधाने वाला, अर्थोपार्जनेच्छकों के लिए अर्थप्रद, उद्विग्न चित्त वालों के लिए धैर्य प्रदान करने वाला है। यह नाट्य रस, भाव, कर्म तथा क्रिया के द्वारा लोक में सबका हित करने वाला है। ये धर्म, अर्थ, यश एवं आयु का अभिवर्धक है, बुद्धि को उद्दीप्त करने वाला है- नाट्य शास्त्र के इस वृहद उद्धरण से तात्पर्य नाटक के उस मूल सामाजिक सरोकार को स्पष्ट करना है जिसकी उपेक्षा अधिकांशतः स्वातंत्र्योत्तर यथार्थवादी हिंदी नाटकों में होती आई है किंतु हबीब साहब ने उस सामाजिक सरोकार को अपने नाट्य कर्म में, पूर्णतः आत्मसात किया है।

नाटक को लेकर संस्कृत नाट्य परंपरा में महाकाव्य जैसी कोई शास्त्रबद्ध शर्तें नहीं थीं। 'नाट्य शास्त्र' इसका स्पष्ट शास्त्रीय प्रमाण है और शूद्रक द्वारा रचित

नाटक ‘मृच्छकटिकम्’ महाकाव्य की सारी शर्तों को तोड़ता हुआ इसके व्यावहारिक प्रमाण का उदाहरण है। अतः नाट्य में संपूर्ण समाज को महत्व प्रदान करने की परंपरा रही है न कि समाज के किसी विशेष वर्ग को। इसी मूल भाव को पकड़कर हबीब साहब अपने नाट्य कर्म में रत रहे हैं।

हबीब साहब के नाट्य कर्म में विविध लोक नाट्य रूपों की चिराभिनव रंग-परंपराओं की, विविध प्रवृत्तियों को गहरी रचनात्मक दृष्टि के साथ ग्रहण किया गया है। आज यह निर्विवाद रूप से स्वीकृत है कि विश्वभर की रंग-संस्कृतियों में भारतीय रंग संस्कृति की प्राचीनता, अनोखी कल्पनाशीलता तथा अनुपम सौंदर्य सृष्टि, अपना बेजोड़ स्थान रखती है। बेजोड़ की इसी मिसाल को स्वातंत्र्योत्तर भारतीय नाट्य में यदि कहीं देखा जा सकता है तो वह है हबीब तनवीर का नाट्य कर्म। हबीब साहब के सतत् आत्मबोधी सृजनशील कृतित्व को ध्यान में रखकर ही उनपर किये गये विचार-विश्लेषण का शीर्षक ‘सतत् आत्मबोधी रचनाकार’ रखा है।

प्रस्तुत विश्लेषण में हबीब तनवीर के रंगकर्म को ही केंद्र बिंदु बनाकर विचार किया गया है। ‘आगरा बाज़ार’, ‘मिट्टी की गाड़ी’, ‘गाँव का नाम ससुराल मोर नाम दामाद’, ‘चरनदास चोर’ तथा ‘देख रहे हैं नैन’ इत्यादि पर नाट्य वस्तु तथा प्रस्तुतीकरण और विशेष रूप से नयी रंग चेतना के निर्माण की दृष्टि से विचार किया गया है। हबीब तनवीर के व्यक्तित्व से जुड़े बहुत से प्रश्नों को इस पुस्तक में प्रस्तुत कर उनकी रचनात्मकता के मूल तक पहुँचने की कोशिश की गई है। इसी संदर्भ में

हबीब साहब के नाट्य कार्यशालाओं में किये गये अनुसंधान पर भी विचार किया गया है।

हबीब साहब का व्यक्तित्व बहुआयामीय रहा है। उन्होंने संस्कृत नाटकों को लोक नाट्य रूपों में परिवर्तित कर प्रस्तुत किया, साथ ही लोक रंग-रूपों की हिंदी रंगकर्म में जगह बनायी। हबीब साहब की नाट्य भाषा संबंधी मान्यताओं, रंगभाषा संबंधी विचारों, प्रस्तुति प्रक्रिया (प्रोडक्शन) संबंधी धारणाओं इत्यादि को प्रस्तुत पुस्तक में ईमानदारी के साथ रखने की कोशिश की है। पारंपरिकता का सार्थक बोध कराने वाली नाट्य भाषा की अनूठी ग्रहणशीलता पर भी इस पुस्तक में विचार किया गया है। भाषा नित्य नवीन परिवर्तनों से गुज़रती है, नये अर्थ ग्रहण करती है तथा संप्रेषण के नये-नये तरीके अपनाती है। किंतु किसी भी लोक प्रचलित बोली में जो संप्रेषणीयता होती है वह समय की रगड़ से शनैः-शनैः प्रखरतर होती जाती है। हबीब साहब का रंग कर्म हमें व्यवहारतः यही समझाता है।

प्रस्तुत पुस्तक की उपादेयता को निम्नलिखित बिंदुओं को ध्यान में रखकर समझा जा सकता है-

(i) हिंदी ही नहीं, किसी भी भाषा के रंगकर्म में पारंपरिक रंग कर्म की अनिवार्यता को नज़र अंदाज नहीं किया जा सकता। पारंपरिक रंग प्रयोग ही हिंदी नाट्य के सामाजिक सरोकार की पूर्ति करते हैं। पारंपरिक नाट्य प्रयोग हमें वह रसानुभूति प्रदान कर सकते हैं जहाँ हम अपनी समस्त आशाओं,

आकांक्षाओं को फलीभूत होते हुए देख सकते हैं। पारंपरिक रंग कर्म में ही हमारा मन उन्मुक्त भाव से जुड़ सकता है, वहाँ हम रंग प्रयोग को जी सकते हैं। पारंपरिक थिएटर हमें भीषण भयों से मुक्त कर आनंदानुभूति प्रदान करता है। पारंपरिक नाट्य हमारे जीवन दर्शन, संस्कृति तथा परिवेश की सच्चाइयों से जुड़ा होता है। यह हमारी विकृत जीवन शैली को परिष्कृत करने की प्रेरणा प्रदान करता है तथा समाज को परिवर्तन के लिए चुनौती भेजता है।

(ii) जो तादात्म्य, तल्लीनता दर्शक वृंद अपने पारंपरिक नाट्य कर्म के साथ अनुभव करता है वैसी तल्लीनता अथवा रंगानुभूति यथार्थवादी सत्याभासी वस्तुपरक नाटक से कदापि प्राप्त नहीं की जा सकती। उदाहरण के लिए 'आगरा बाज़ार', 'मिट्टी की गाड़ी', 'गाँव का नाम ससुराल मोर नाम दामाद', 'चरनदास चोर', 'देख रहे हैं नैन' इत्यादि नाटकों के रंग विधान एवं रंग संवेदन को देखा जा सकता है। हमारा पारंपरिक थिएटर हमें जितनी निकटता से जोड़ता है उतनी ही निर्ममता से यह अहसास भी कराता है कि यह नाटक है, जीवन नहीं। उपर्युक्त नाटकों की अंतर्वस्तु में प्रेक्षक समाज को झकझोरने की विलक्षण शक्ति निहित है। इनकी शैलीबद्धता में पारंपरिकता का संधान किया गया है। इन नाटकों की भाषा में निहित व्यंग्य सहते नहीं बनता।